ISSN 2229-4546

कोसल - 12
KOSALA-XII

YEAR-2021



Directorate of Culture and Archaeology
Government of Chhattisgarh
Raipur

कोसल-12

KOSALA-XII

YEAR-2021

Journal of the Directorate of Culture and Archaeology

Directorate of Culture and Archaeology

Government of Chhattisgarh

Kosala is published annually and it is a refereed journal.

Price : Rs. 750/-
US 50 $ International (inclusive of postage by air)

Manuscripts whether in the form of research paper or notes, news with illustrations or book reviews, offered for publication should be send to the Editor, Kosala, Directorate of Culture and Archaeology, Government of Chhattisgarh, M.G.M. Museum, Raipur (C.G.)

The Editor is not responsible for the opinion and facts expressed by the contributors.

Front cover : • Sadakshari-Lokeshvara (Avalokiteshvara) Bronze, Sirpur, c. 7th-8th A.D.

Back cover :
- Rock Paintings of Khamamada (Bhudumati) shelter in Korba District, Chhattisgarh
- Rock Paintings of Barahajhariya shelter in Korba District, Chhattisgarh

Published by : Directorate of Culture and Archaeology, Government of Chhattisgarh, M.G.M. Museum, Civil lines, Raipur-492001

Printed at : Chhattisgarh Samvad

अनुक्रम

Contents

हिन्दी खण्ड (Hindi Section)

अंग्रेजी खण्ड English Section

अन्य राजकीय सीमाओं से प्रभावित बस्तर की प्रतिमायें

आराधना चतुर्वेदी एवं मोहन कुमार साहू*

भूमिका

प्राचीन दक्षिण कोसल में विभिन्न राजवंशों का शासन रहा, जिनका पड़ोसी राज्यों के साथ भी अच्छा संबंध था। वैवाहिक संबंध तो भारतीय परम्परा की देन रही है जिसमें पड़ोसी राज्यों के साथ संबंध सुदृढ़ करने के लिए इस संबंध को विशेष महत्व दिया जाता था। इसके अतिरिक्त एक राज्य के कलाकार दूसरे राज्यों में आजीविका हेतु पलायन कर जाते थे, इससे उनके साथ उनकी कला एवं संस्कृति भी साथ चली जाती थी। कुछ राज्यों में राजाओं द्वारा संबंध बेहतर बनाने के लिए विशेष दूतों का भी आदान–प्रदान किया जाता था। इसका प्रभाव दूरगामी होता था। क्षेत्र की कला एवं संस्कृति पर उनका प्रभाव पड़ना लाजमी था। बस्तर क्षेत्र में ऐसे परिवर्तनशील कला संस्कृति के दर्शन होते हैं। यह क्षेत्र विभिन्न राज्यों की सीमा रेखा है। अतएव दूसरे राज्यों का इससे सतत सम्पर्क होता है। शासकों द्वारा कलाकृतियों को सुन्दरता प्रदान करने के लिए तथा नई–नई कलाकृतियों के निर्माण हेतु अन्य राज्यों से शिल्पियों को बुलवाया जाता था। व्यापारियों, यात्रियों, शिल्पियों आदि के आवागमन के चलते यहाँ की कलाकृतियों में समन्वित रूप दिखाई देता है। इन कला शैलियो में मागधी शैली, नालंदा शैली, चालुक्य शैली, कुर्किहार शैली, बादामी शैली, आन्ध्र शैली, काकतीय शैली, उड़ीसा शैली, कलिंग शैली आदि का समावेश यहाँ की कलाकृतियों में दृश्यमान होते हैं।

कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषय वस्तु एवं निर्माण विधा में समाज की धारणाओं एवं तकनीकों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। ये धारणायें एवं तकनीक संस्कृति का अंग होती है। समर्थ एवं प्रतिभाशाली शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य की नयी शैलियां अस्तित्व में आती हैं, पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। भारतीय कला मुख्यतः लोगों की धार्मिक मान्यताओं का मूर्त रूप रही है। यह वस्तुतः धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति रही है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्म भारतीय परम्परा के तीन मुख्य धर्म रहे हैं। ब्राह्मण धर्म वैदिक धारा का प्राचीन धर्म था जिसके पांच प्रमुख सम्प्रदायों–वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर से संबंधित मंदिरों और मूर्तियों के प्रभूत उदाहरण भारत के सभी क्षेत्रों से मिलते हैं।

बस्तर क्षेत्र विभिन्न प्रदेशों से जुड़े होने के कारण यहाँ की मूर्तिकला में इन प्रदेशों के मूर्तिशिल्प का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है जो अलग अलग शैलियों में निर्मित है।

काकतीय शैली

काकतीय, आन्ध्र या तेलंगाना क्षेत्र के शासक थे जिनमें बेत प्रथम, प्रोल प्रथम, बेत द्वितीय, प्रोल द्वितीय, गणपति, महादेव जैसे शासक हुए, जिन्होंने 11वीं शती ईसवी के प्रारम्भ से 13वी. शती ईसवी के अन्त तक शासन किया। काकतीय

*शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

राजवंश से संबंधित मुख्य कला स्थल वारंगल, नलगोण्ड, गुन्टूर, नेल्लोर और कुर्नूल रहे हैं। काकतीयों की राजधानी वारंगल थी। इनके काल में चालुक्य शैली में तेलंगाना के विभिन्न क्षेत्रों में मंदिरो और मूर्तियों का निर्माण हुआ जिनमें चालुक्य एवं यादव, स्थापत्य एवं मूर्तिकला के विभिन्न तत्वों का सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है। काले बेसाल्ट पत्थर में निर्मित काकतीय मूर्तियों में अलंकरणों की अतिशय प्रवृत्ति मिलती है जिन्हें अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ कुछ इस प्रकार उकेरा गया है जो धातु शिल्प का भाव व्यक्त करती है। लक्षणों एवं लांछनों से बोझिल काकतीय मूर्तियां आकर्षक और भव्य होते हुए भी गतिशील और जीवन्त होने के स्थान पर स्थिर भाववाली दिखाई देती है।

काकतीय मूर्तिकला पर पूर्वी चालुक्यों की अपेक्षा पश्चिमी चालुक्यों का अधिक प्रभाव था।

वेंगी शैली

आन्ध्र के वेंगी क्षेत्र में कुब्ज विष्णुवर्धन ने चालुक्यों की पूर्वी शाखा की स्थापना की। स्वयं कुब्ज विष्णुवर्धन कला का महान संरक्षक था। उसी के काल में शिव के एक विशाल मंदिर का हुआ जिसके प्रवेशद्वार पर एकाश्मक पत्थर में बनी विशालकाय द्वारपालों की आकृतियाँ पूर्वी चालुक्यों के प्रारम्भिक मूर्तिकला के उदाहरण हैं।

प्रारम्भिक काल के पूर्वी चालुक्यों की मूर्तियाँ बादामी के चालुक्यों की मूर्तियों के समान विशालकाय है। गोदावरी जिले के बिक्कावोल नामक स्थान से प्रारम्भिक काल की एकाश्मक पत्थर में बनी गणेश की द्विभुजी महाकाय मूर्ति मिली है जिसमें गणेश के सिर पर बना पद्म मुकुट अत्यंत मनोहारी है।

पूर्वी चालुक्यों की कला में प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, पूर्वी गंग, चेदि, पल्लव और चोल कला का मिश्रित प्रभाव दिखाई देता है।

कलचुरियों के समय में विकसित मध्य भारत की कला शैलियों में डाहल तथा दक्षिण कोसल की शैलियों का विशेष महत्व था। अन्य भारतीय शासकों के समान कलचुरि भी कला के प्रेमी थे। इनके समय में दक्कन, डाहल, दक्षिण कोसल कला के प्रमुख केन्द्र थे।

डाहल शैली

डाहल मूर्तिकला के प्रारम्भिक उदाहरणों में नांदचांद (पन्ना) से प्राप्त मातृका मूर्तियाँ उल्लेखनीय है। वाहनों से युक्त मातृका मूर्तियों के मुख गोल है और बनावट में देहयष्टि की रेखाओं का सरल प्रवाह उल्लेखनीय है। अर्द्धनारीश्वर मूर्ति, ललितासन मूर्ति, राजा–रानी की आकृति तथा परिचारक एवं परिचारिका की आकृतियाँ भी इस शैली के उदाहरण हैं। विभिन्न क्षेत्रों में बने मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों के आधार पर कलचुरि मूर्तियों के क्रमिक विकास की जानकारी मिलती है। डाहल शैली के उदाहरणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस शैली की मूर्तिकला में विकास के कई क्रम थे। ये मूर्तियां अधिकांशतः मंदिरों के ललाटबिम्बों पर उत्कीर्ण हैं। इनमें नटेश का गतिशील नृत्य भंगिमाओं में अंकन हुआ। नटेश के अतिरिक्त रहली के सूर्य मंदिर की शिव, विष्णु, ब्रह्मा, उमामहेश्वर और हरिहर की मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

डाहल शैली की 9वीं शती ईसवी की विशेषताएं बेला–बैजनाथ (रीवां) एवं बिनइका (सागर) के मंदिरों की मूर्तियों में दिखलाई देती है।

बैजनाथ के मंदिर के द्वार के सिरदल पर नवग्रह, लकुलीश तथा पार्श्वों की ब्रह्मा एवं विष्णु की आकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। डाहल शैली की लकुलीश की यह एकमात्र मूर्ति है।

डाहल शैली में मुख्यतः शैव मूर्तियों की प्रधानता दिखाई है, जिनमें शिव की योगीश्वर, गजान्तक और त्रिपुरान्तक मूर्तियाँ प्रमुख है।

दक्षिण कोसल शैली

दक्षिण कोसल में यद्यपि कलचुरियों के पूर्व पाण्डु, नल एवं बाण वंशों के शासकों का आधिपत्य था, किन्तु कला की दृष्टि से कलचुरी शासकों का काल उल्लेखनीय रहा है। दक्षिण कोसल की कलचुरी कालीन मूर्तियाँ स्थानीय विशेषताओं से युक्त है। इस समय शारीरिक अनुपात की दृष्टि से लम्बी मूर्तियाँ बनी। मुख मांसल और कटि एवं पैर कुछ तिरछे बनाये गये हैं। शिल्प सज्जा की दृष्टि से जांजगीर के शैव मंदिर की मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है। मंदिर के विभिन्न भागों पर दिक्पाल, अप्सरा, व्याल एवं विष्णु के चतुर्विंशति रूप की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। विष्णु के अतिरिक्त देव आकृतियों में शिव और ब्रह्मा की मूर्तियाँ तथा विशेष वेशभूषा एवं जटाभार युक्त योगियों की आकृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

दक्षिण कोसल की मूर्तियों में सज्जा अथवा अलंकरण की प्रचुरता दिखाई देती है। कतिपय मूर्तियाँ एक विशिष्ट कलाधारा की ओर संकेत करती हैं। ये मूर्तियाँ व्यक्ति अथवा शबीह (पोट्रेट) अंकन है। इनमें राजा–रानी, मंत्री, अमात्य आदि की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। यहाँ से देव आकृतियों एवं प्रतिकृतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों जैसे– रामकथा से संबंधित, बालिवध, सीताहरण, राम वनगमन, सेतुबंध, राम–रावण युद्ध आदि का भी अंकन प्राप्त होता है। इसके अलावा यहाँ से काम कला से संबंधित आकृतियाँ भी दिखाई देती है। डाहल शैली में ऐसे अंकनों का अभाव है।

दक्षिण कोसल शैली का विस्तार पर्याप्त व्यापक था। महाराष्ट्र के चांदा जिले में मारकण्डा स्थित मंदिर पर बनी अप्सरा एवं नायिका मूर्तियों में यह प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इनके अलावा शैव संबंधित प्रतिमाओं में बस्तर क्षेत्र के उमामहेश्वर, केसरपाल के भैरव, बारसूर मंदिर के उमामहेश्वर, दंतेवाड़ा के शिव, भैरव, नंदी, शिवलिंग, पेदामाटूर के पास सकल नारायण में शिवलिंग एवं नंदी, गुल्लापेटा में चतुर्भुजी शिव आदि हैं। नारायणपुर में विष्णु मंदिर में स्थापित विष्णु, विष्णु के अंतिम अवतार 'कल्कि नारायण' की प्राण प्रतिष्ठा टेमरा नामक ग्राम से ज्ञात होता है। कुरूसपाल, केसरपाल, माधोता, देवरली आदि जगहों से विष्णु की प्रतिमाएं मिली हैं। भैरमगढ़ से अष्टभुजी हरिहर–हिरण्यगर्भ की अलंकृत प्रतिमा प्राप्त हुई है। शाक्त में महिषमर्दिनी, काली, चामुण्डा, सप्तमातृकायें आदि की मूर्तियाँ मिली हैं।

छिन्दकनाग वंशी शासकों की कुलदेवी 'मणिकेश्वरी' थी, इसलिए इस क्षेत्र में शक्ति पूजा प्रचलित रही होगी। भैरमगढ़ में चतुर्भुजी पार्वती, समलूर में गौरी, देवरली में अष्टभुजी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, भैरवी, वाराही, चामुण्डा, शिवा, महिषासुरमर्दिनी, कात्यायनी, अम्बिका, इन्द्राणी आदि की प्रतिमायें इस क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। गणेश की प्रतिमायें बारसूर से मिली हैं। बौद्ध धर्म से संबंधित प्रतिमायें भोंगापाल से प्राप्त हुई हैं। जैन धर्म से संबंधित लगभग 14 प्रतिमायें भी बस्तर क्षेत्र से मिली हैं, जिनमें गढ़बोधरा की पार्श्वनाथ प्रतिमा (11वीं शती), घोटियाघोटा से महावीर प्रतिमा,

केसरपाल से पद्मावती, जगदलपुर के बालाजी मंदिर में तीर्थंकर प्रतिमा आदि प्रमुख हैं।

कलिंग शैली

उड़ीसा या कलिंग के इतिहास में शैलोद्भव, भौमकर, सोम और तत्पश्चात् गंग वंशों के शासकों ने अपना आधिपत्य बनाये रखा। इनके काल में प्रभूत संख्या में उड़ीसा के विभिन्न क्षेत्रों में मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिनमें भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क के मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। यहाँ शैव धर्म में पाशुपत शाखा का प्रारंभ में विशेष प्रभाव था, जिसके कारण परशुरामेश्वर, भारती मठ तथा पंचपाण्डव गुफा में पाशुपत धर्म के प्रवर्तक लकुलीश की मूर्तियों की प्रधानता मिलती है। मधुपुर से तारा, अवलोकितेश्वर, पर्णशबरी एवं ध्यानी बुद्ध की मूर्तियाँ मिली हैं, जो बौद्ध धर्म से प्रभावित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर परशुरामेश्वर तथा अन्य प्रारम्भिक शैली की उड़ीसा की मूर्तियों में नदी देवियों, अप्सराओं (अलसकन्या) तथा अन्य आकृतियों में चपलता और क्रियाशीलता पूरी तरह स्पष्ट है। नर्तकों एवं विभिन्न वाद्यवादकों की मूर्तियों में नृत्य की लयात्मक गतिशीलता तथा आकृतियों का भावपूर्ण मुद्रा उल्लेखनीय है। वैताल देउल पर सप्ताश्व रथ पर सूर्य की स्थानक आकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। रामायण तथा महाभारत से संबंधित कथा प्रसंगों का भी अंकन यहाँ दिखलाई पड़ता है।

प्रारम्भिक कलिंग शैली के उदाहरण में ब्राह्मण धर्म के शिव तथा उनके विभिन्न रूपों की प्रधानता के साथ ही अन्य देवों और बौद्ध तथा जैन आराध्य देवों की भी पर्याप्त मूर्तियां बनी। शिव के विभिन्न रूपों में लकुलीश, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर, कल्याण–सुन्दर, रावणानुग्रह, उमामहेश्वर तथा अन्य ब्राह्मण देवों में गणेश, कार्तिकेय, महिषमर्दिनी, सूर्य, वराह, दिक्पाल, पार्वती आदि की मूर्तियाँ हैं।

11वीं–12वीं शती में खण्डगिरी स्थित नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं में क्रमशः तीर्थंकरों की 7 और 24 मूर्तियाँ उकेरी हैं जिनमें उनके लांछन भी उत्कीर्ण हैं। इनमें पारम्परिक यक्षियों का अंकन है।

स्टेला क्रैमरिश ने भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क की मूर्तियों को कलिंग शैली के अन्तर्गत रखा है। भुवनेश्वर के शाक्त मंदिरों में बाह्य भित्ति पर पार्वती, अर्द्धनारीश्वर और महिषमर्दिनी तथा वैष्णव मंदिरों (अनन्त वासुदेव) पर विष्णु के वराह, त्रिविक्रम और नृसिंह अवतार स्वरूपों की मूर्तियाँ बनी हैं। सप्तमातृका, लक्ष्मी, गजलक्ष्मी, सरस्वती, महिषमर्दिनी एवं पार्वती की मूर्तियाँ मुख्यतः प्राप्त हैं।

भुवनेश्वर की मूर्तियों में स्पष्टतः बादामी की चालुक्य मूर्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। बादामी के समान ही दोनों कानों में अलग अलग कुण्डल और एक ही आयुध द्वारा दो आयुधों का संकेत महत्वपूर्ण है। बादामी के समान ही यहाँ नाग की पूजा प्रचलित थी। कोणार्क के सूर्य मंदिर में सूर्य मूर्ति लक्षण के विकास की पराकाष्ठा प्रदर्शित करती है, जिनमें सप्ताश्व–रथ, ऊषा–प्रत्यूषा, दण्ड, पिंगल, गंधर्व तथा कुछ अन्य आकृतियाँ भी बनी है। भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मंदिर एवं राजा–रानी मंदिरों के विपरीत नारी मूर्तियों को किंचित मांसल दिखलाकर खजुराहो शैली में ऐन्द्रिकता के भाव को अभिव्यक्त किया गया है। मंदिरो पर देव, गन्धर्व, नाग, विद्याधर एवं

सुरसुन्दरियों की मनमोहक मुद्राओं वाली मूर्तियां तथा काम क्रिया के प्रभूत अंकन मिलते हैं। उड़ीसा शिल्प की विशेषता यह थी कि उसमें अन्य प्रान्तीय शैलियों के उत्कृष्ट तत्वों को अधिक जागरूकता के साथ मान्यता दी गई है। भौगोलिक स्थिति के कारण उड़ीसा की मूर्तिकला पर मध्य, पूर्वी और दक्षिण भारत की मूर्तिकला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

निष्कर्ष

दक्षिण कोसल के कलचुरि कालीन मूर्तिकला व्यापक थी। यहाँ के मूर्तियों में उड़ीसा शैली, डाहल शैली, वेंगी (आन्ध्र) शैली, काकतीय शैली आदि कला शैली का प्रभाव विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। बस्तर का क्षेत्र विभिन्न राज्य सीमाओं से घिरे होने के कारण कलाकारों के कलाचातुर्य का आदान–प्रदान अवश्यम्भावी था। इसी के आधार पर यहाँ की कलाकृतियां विशेष रूप से अपने नवीन रूप सौन्दर्य और वस्त्रावरणों से सुसज्जित दिखाई देते हैं। क्षेत्र का प्रभाव कलाकृतियों में विशेष रूप से दर्शनीय है। सीमावर्ती कला का भी प्रभाव कलाकृतियों में अत्यंत ही सूक्ष्मता से दिखाई देता है। रामायण काल से लेकर गुप्तकाल तक की सभी विधाएं यहाँ की कलाकृतियों में संरक्षित दिखाई देती हैं। तांत्रिक प्रभाव भी तंत्रयान के मद्देनजर यहाँ की शाक्त प्रतिमाओं में दिखाई देता है। वैष्णव प्रतिमाओं में अलंकरण की स्वाभाविकता एवं गतिशीलता का प्रखर रूप दिखाई देता है। कलाकृतियों में प्राचीन सामंजस्य एवं समन्वय की भावना का भी प्रदर्शन प्राप्त होता है। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण आदि धर्मों की कलाकृतियों में अलंकरण की स्वाभाविकता का स्वरूप प्रायः एक जैसी ही दिखाई पड़ती है। निष्कर्षतः बस्तर की शिल्पकला में चतुर्दिक कलाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दर्शनीय है।

संदर्भ एवं टिप्पणी :

1. राय, गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृ. 118.
2. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृ. 176.